AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

हिन्दी उपन्यासों के आदिवासी पात्र : सामान्य परिचय

ORIGINAL ARTICLE

Author
मनीला समद,
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखंड, भारत

शोध सार

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी पात्रों को आरंभिक उपन्यासों में स्थान नहीं मिला है। आदिवासी विषयक उपन्यासों में ही प्रमुखता आदिवासी पात्रों को स्थान मिला। गैर–आदिवासी उपन्यासकार तथा आदिवासी उपन्यासकारों का आदिवासी समाज को देखने तथा समझने का नजरिया अलग–अलग है जिससे उपन्यास में कई तरह के पात्रों का अवतरण होता है। आदिवासी विषयक उपन्यासों के लेखन में सुविधा के लिए उपन्यासकारों को तीन श्रेणी में बांटा जा सकता है जिससे आदिवासी पात्रों के अध्ययन में सहायता मिलती है साथ ही पात्रों के विकास का भी पता चलता है। कई पात्रों में उपन्यासकार के विचारधारा का प्रभाव अधिक देखने को मिलता। कुछ में उपन्यासकार का आदिवासी के प्रति पूर्वाग्रह का असर दिखता है साथ ही कुछ उपन्यासों में आदिवासी पात्र मुखर रूप से सामने आए हैं उनके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास देखने को मिलता है।

मुख्य शब्द

आदिवासी, उपन्यास, पात्र, आदिवासी समाज, लेखकीय विचारधारा।

हिन्दी उपन्यास लेखन की परम्परा में आदिवासी विषयों में लेखन की परम्परा बहुत समृद्ध नहीं रही है। हिन्दी उपन्यास के आरंभिक दौर में आदिवासी विषय या पात्र देखने को नहीं मिलते। ''समकालीन जनमत के आदिवासी विशेषांक के संपादकीय में रामजी राय लिखते है कि, जिसे राष्ट्रभाषा घोषित किया गया, उसी राष्ट्रभाषा हिन्दी में आदिवासियों की जिन्दगी से संबंधित किताबें या साहित्य रचनाएं बहुत कम मिलती है। आश्चर्य है कि आदिवासियों के अनंत उत्पीड़न और जुल्म के खिलाफ हिन्दी साहित्य संस्कृति में लम्बे समय तक कहीं कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती।''[1]

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी पात्र मुख्यतः आदिवासी विषयक उपन्यासों में ही देखने को मिलते हैं। इसके अलावा अन्य उपन्यासों में प्रसंगवश एकांक ही आदिवासी पात्रों का जिक्र मिलता है। हिन्दी में आदिवासी विषयक उपन्यासों की संख्या अब अच्छी खासी मात्रा में है। लेकिन उनमें से बहुतायत उपन्यासों में आदिवासी जीवन की जिजीविषा, संस्कृति, जीवन–संघर्ष, मान्यताएं, दर्शन, सामाजिक संरचना आदि का चित्रण नहीं देखने को मिलता है। ऐसा नहीं है कि उपन्यासकारों में इन विषयों को अपनी लेखनी में स्थान नहीं दिया है। परन्तु आदिवासी जीवन को सम्पूर्णता में चित्रित करनेवाले उपन्यासों की संख्या कम है।

''आदिवासी जीवन पर लिखे गये उपन्यासों में पहला उपन्यास श्री जगन्नाथ सिंह चतुर्वेदी लिखित 'बसंत मालती' (1899) को माना जाता है, जो मुंगेर जिले के मलयपुर अंचल के मल्लाह आदिवासियों के जीवन पर आधारित है।''[2] जिसके अधिकांश पात्र आदिवासी है। इसके बाद 1909 में रामचीज सिंह वल्लभ का उपन्यास 'वन–विहंगिनी' का नाम आता है। 'वन–विहंगिनी' में संताल परगना के आदिवासी पात्रों को केन्द्र में रखा गया है। देवेन्द्रनाथ सत्यार्थी ने अपने उपन्यास 'रथ के पहिये' (1952) में गोंड आदिवासी के जनजीवन को अपने उपन्यास में स्थान दिया है। 'मैला आँचल' में संथाल आदिवासियों की प्रस्तुति हिन्दी साहित्य में आदिवासी जीवन की प्रमुख आहट बनकर सामने आती है।''[3]

'मैला' आँचल में चुनका मांझी, सीनियां मुरमु, जोगिया मांझी आदि पात्रों में उल्लेख है। संथालों के द्वारा तैयार की गई जमीन उनसे छीन ली गई। वे जानते हैं कि अपना संघर्ष स्वयं करना है, कोई उनका साथ देने नहीं आएगा। 'इसलिए बड़े–बूढ़े ठीक कह गऐ हैं– यहां के लोगों का विश्वास मत करना। जब जिससे जो फायदा हो ले लेना, मगर किसी के साथ मत होना। संथाल संथाल है और दिक्कू–दिक्कू पाँचाय देह को पत्थल की तरह मजबूत बनाता है और पीकर देखो यहां का दारू पत्थल को गला देगा। हरगिन नहीं। दिक्कू आदमी, भटठी का दारू, इसका बिस्वास नहीं। ....अरे, तीर तो है! यही सबसे बड़ा साथीी है। साथी छोड़ सकता है, तीर कभी चूकता नही।''[4] संथाल अपने दम पर संघर्ष करते है उसे बाहरी किसी नेता या मसीहा की जरूरत नहीं। रेणु ने आदिवासी जीवन संघर्ष मुख्य रूप से आर्थिक संघर्ष का चित्रण यथार्थवादी रूप से किया है।

कथा सम्राट प्रेमचन्द्र के उपन्यास 'गोदान' में भी मेहता–मालती के जंगल के प्रसंग के संदर्भ में आदिवासी युवती का जिक्र आता है। लेकिन इसमें लेखक ने आदिवासी युवती का जिक्र रोमानियत तरीके से की है। ''युवती'' का रंग था तो काला और कभी गहरा, कपड़े बहुत ही मैले और फूहड़, आभूषण के नाम पर केवल हाथों मे दो–दो मोटी चूड़ियाँ, सिर के बाल उलझे अलग–अलग। मुख मंडल का कोई भाग ऐसा नहीं, जिसे सुन्दर या सुघड़ कहा जा सके, लेकिन उस स्वच्छ, निर्मल जलवायु ने उसके कालेपन में ऐसा लावण्य भर दिया था और प्रकृति की गोद में पालकर उसके अंग इतने सुडौल, सुगठित और स्वच्छंद हो गए थे कि यौवन का चित्र खींचने के लिए उससे सुन्दर कोई रूप न मिलता।''[5]

आदिवासी विषयक उपन्यासों के अध्ययन से तीन कोटि की धारा देखी जा सकती है। ''पहली धारा के अंतर्गत वे उपन्यास हैं जिनका उद्देश्य आदिवासी जीवन से बाहरी समाजों को परिचित कराना रहा है। एक अजूबे के रूप में आदिवासी जीवन प्रस्तुत हुआ है।''[6] इन उपन्यासों में आदिवासी के विषय में जो पूर्वाग्रह है, जो प्रचलित दुष्प्रचार तथा उनके पिछड़ेपन को लेकर जो विचार है उनको आधार बनाया गया। इनमें आदिवासी पात्रों का स्वतः विकास देखने को नहीं मिलता। पात्रों में लेखक की पूर्वाग्रह, दृष्टिकोण का प्रभाव अधिक है। इन उपन्यासों में आदिवासी सभ्यता–संस्कृति, मान्यताओं, परम्पराओं का गलत तरीके से चित्रण देखने को मिलता है। घोटुल जैसी सामाजिक प्रथा का स्वच्छंद और रोमांटिक चित्रण किया गया। आदिवासी जीवन की वास्तविकता, उनके जीवन संघर्ष, पहचान की समस्या, आर्थिक, सांस्कृतिक समस्याओं की ओर ध्यान न जाकर केवल उन्हें स्वच्छंद बर्बर जाति का माना गया और उसी रूप में उसका चित्रण हुआ। मानो वे मात्र तीर–धनुष लिये शिकार करते हुए मौज–मस्ती का जीवन जीते हैं और अपने सामाजिक सरोकारों से दूर पशुवत जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

इसमें से कई उपन्यासकार ने किसी आदिवासी क्षेत्र में ऊंचे ओहदे पर रहे और समाज को ऊपरी तौर पर देखकर अपने अनुभव को, अपनी स्वयं की दृष्टिकोण, अपने बड़प्पन को सामने रखकर लेखन किया। योगेन्द्रनाथ सिन्हा, राजेन्द्र अवस्थी, शानी, श्याम परमार इत्यादि इसी वर्ग के उपन्यासकार है। योगेन्द्रनाथ सिन्हा का उपन्यास 'वनलक्ष्मी' हो आदिवासियों पर लिखा गया है लेकिन उपन्यास का मुख्य पात्र शिवदत्त है। कथानायिका बुदनी ईसाई जेफरन से प्रेम करने लगती है। ''सबसे खास बात बुदनी में यह थी कि वह अपने आकर्षक सौन्दर्य का मूल्य समझती थी और अपने समाज के गंवारों के बीच इसे नष्ट होते देख क्षुब्ध और हताश होती थी।''[7] वह पूरी तरह मिथ्यापूर्ण बात है। दिकु लोगों के बीच एक आदिवासी मजदूरिन को अपनापन लगे ये सरासर मिथ्या बातें है।

ISSN : **2583-3189 (E), 2583-0775 (P)**
Year-01, Volume-01, Issue-04

''दूसरी श्रेणी में हम उन उपन्यासकारों को रख सकते हैं जिनमें लेखकीय विचारधारा मुख्यतः हावी रही है और उसी चिर–परिचित दृष्टि का उपयोग उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। फलस्वरूप यहां आदिवासी समाज [illegible][8] इन उपन्यासकारों के उपन्यास में आदिवासी पात्र शोषित और प्रताड़ित होते हैं। अधिकतर उपन्यास में आदिवासी पात्र शोषण को आत्मसात् कर लेते हैं, उसका प्रतिकार नहीं करते। कोई एक गैर आदिवासी शहर से इन क्षेत्रों मे जाता है और वह आदिवासी समाज के उद्धारक के रूप में प्रस्तुत होता है। उक्त उपन्यासकारों के लेखन में भी आदिवासी जिजीविषा, सभ्यता–संस्कृति आदि का सम्पूर्ण विवेचन नहीं मिलता।

इस श्रेणी में विनोद कुमार, संजीव, मधु कांकरिया, मनमोहन पाठक, राकेष कुमार सिंह जैसे अनेक उपन्यासकारों के दृष्टिकोण को शामिल किया जा सकता है। लेखक अदिवासी संबंधित पूर्वाग्रहों से भी पूरी तरह बाहर नहीं आ पाए हैं। ''आदिवासी लोगों की दो कमजोर नसें है– अरण्यमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता! अरण्यमुखी संस्कृति उन्हें सभ्यता के विकास से जुड़ने नहीं देती और उत्सवधर्मिता इन्हें कंगाल बनाती रहती है। हण्डिया या दारू ये पिएंगे ही और हर उत्सव को मस्त होकर मनाएंगें।''[9] आदिवासी और विकास, उत्थान के प्रति सजग नहीं है, उनका पूर्ण व्यक्तित्व विकास नहीं है, उनमें समझ की कमी है ऐसे पूर्वाग्रह इसी ओर इशारा करते है। इन पूर्वाग्रहों तथा धारणाओं के कारण उपन्यास के पात्रों का पूर्ण सहज विकास नहीं हो पाया है। लेखक उपन्यासों में गैर आदिवासी पात्र के मसीहापन को प्राथमिकता देते हैं। उक्त उपन्यासकारों के उपन्यास में आदिवासी अपने अधिकारों, अपने स्वयं के लिए जागरूक नहीं बस अपने में ही मस्त है। कुछ उपन्यासों में आदिवासी पात्र प्रतिकार भी करते हैं परन्तु उन पात्रों पर लेखक की विचारधारा का प्रभाव अधिक है।

हिन्दी उपन्यास में आदिवासी विषयक कथा साहित्य के लेखन में तीसरे वर्ग हम वैसे उपन्यासकारों को रख सकते हैं जिनके उपन्यास में आदिवासी जीवन संघर्ष, जिजीविषा, उसकी कमजोरियों तथा संस्कृति मजबूती से उपस्थित हुई है। इन उपन्यासों में आदिवासी पात्र अपना एक विषेश महत्व रखते हैं क्योंकि अपनी कमजोरियों के साथ भी वे एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व है। वे अपना संघर्ष स्वयं करते हैं। उन्हें किसी मसीहा का इंतजार नहीं है इस तरह के उपन्यासकारों में पीटर पौल एक्का, वाल्टर भेंगरा, तरूण, रणेन्द्र आदि उपन्यासकार शामिल हैं।

''रजनी–संध्या ने मिलकर गांव की युवतियां, औरतों में चेतना भर दी थी। अब रेजा के काम पर वे एक साथ जाती। ड्राइवर–खलासी ने कभी उन पर ज्यादती करने की कोशिश की थी तो उन्होंने मिलकर अच्छी पिटाई कर दी थी।''[10] आदिवासी स्त्रियाँ तथाकथित मुख्य धारा के समाज की स्त्रियों से स्वतंत्र है। वे घर की चाहरदिवारी में बंद नहीं होती। आदिवासी समाज में खुलापन है। इसी का गलत फायदा उठाकर तथाकथित मुख्य धारा के पुरूष आदिवासी स्त्रियों को सहज सुलभ समझने की भूल करते हैं।

आदिवासी समाज सदियों से शोषित–पीड़ित रहा है। आज की नई पीढ़ी अपनी उन्नति तथा समाज की उन्नति के लिए चिन्तित तथा जागरूक है। किशोर एक ऐसा ही युवा है जो राजनीति में आकर अपने समाज अपने लोगों की आवाज बनना चाहता है। ''सब ने दिल थाम कर समाचार सुना था। जीत की बात पक्की हो गयी थी। सब खुशी से नाचने लगे।''[11]

आदिवाासी पात्रों की रचना अलग–अलग तरीकों से की गई। यह तो ज्ञातव्य है कि लेखक की दृष्टिकोण, विचारधारा, पूर्वाग्रह आदि का प्रभाव उसकी रचना में होता ही है। साथ ही साथ उसके अनुभव परिस्थति तथा परिवेश की समझ के अनुसार भी रचना पर प्रभाव पड़ता है। लेखक अपने रचनाओं के पात्रों को उसी आधार पर गढ़ता है। आदिवासी पात्रों को गढ़ने के पीछे भी यह आधार काम करता है। सदियों से आदिवसी के बारे में भिन्न–भिन्न तरह के पूर्वाग्रह बनाए गये हैं। ''संभ्रांत वर्ग और मीडिया ने आदिवासी समाज की एक नकली और मनोरंजक छवि बना दी है, जिसको टीवी पर या पत्र पत्रिकाओं में देखकर नई पीढ़ी यही सोंचती है कि ये आदिवासी तो बड़े रंगीन मिजाज है। हमेशा नाचते गाते रहते हैं। इनको न कोई दुनियादारी का झंझट है और न कोई दुःख तकलीफ।''[12]

इसी तरह की दृष्टिकोण आदिवासी पात्रों का सही रेखांकन करने में बाधक है। आज 'आदिवासी विर्मश' की

चर्चा जोरों पर है जिससे लोग आदिवासी विषयों को समझने लगे हैं।

निष्कर्ष

आदिवासी लेखकों की रचनाओं में आदिवासी पात्र अपने व्यक्तित्व के साथ उभर कर सामने आए हैं। गैर आदिवासी लेखकों की रचनाओं में ऐसा कम ही देखने को मिलता है। कालान्तर में गैर आदिवासी लेखकों ने भी आदिवासी पात्रों का सही अंकन करने की कोशिश की है। आदिवासी समाज की समस्याओं उनकी संस्कृति, भाषा–परम्परा को जितने नजदीक से लेखक देखेगा और अनुभव करेगा वह उतनी जीवंतता से पात्रों की रचना कर सकेगा।

संदर्भ सूची

1. मीणा गंगासहाय, *आदिवासी और हिन्दी उपन्यास, अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष,* अनन्नय प्रकाशन प्रथम संस्करण 2016, पुनमुर्द्रण–2018, पृ०–125 (समकालीन जनमत, आदिवासी मिथ और यथार्थ, सितंबर 2003, अंक 2–3 संपादकीय पृ०–5)।
2. विश्वकर्मा विनोद, *हिन्दी उपन्यास और आदिवासी चिन्तन संघर्ष, सपने और चुनौतियों एवं 21 वीं सदी,* सं०, अनंग प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2015, पृष्ठ सं0–89।
3. मीणा गंगासहाय, आदिवासी और हिन्दी उपन्यास अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष, अनन्नय प्रकाशन प्रथम संस्करण 2016, पृ०सं०–125।
4. रेणु फणीश्वरनाथ, *''मैला'' आंचल,* राजकमल प्रकाशन, दूसरी आवृत्ति 2009, पृ०सं० –189।
5. प्रेमचन्द, *गोदान,* लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 1997 पृष्ठ सं० 71।
6. मीणा गंगासहाय, *आदिवासी और हिन्दी उपन्यास अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष,* अनन्य प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2016, पुनर्मुद्रण–2018, पृष्ठ सं० 126।
7. *झारखण्ड के आदिवासियों के बीच, वीर भारत तलवार,* भारतीय ज्ञानपीठ, दूसरा संस्करण–2012, पृष्ठ सं०–428।
8. मीणा गंगासहाय, *आदिवासी और हिन्दी उपन्यास अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष,* अन्नय प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2016, पुनर्मुद्रण 2018, पृष्ठ संख्या–126।
9. दूबे संजीव, *पांव तले की,* वाग्देवी प्रकाशन, प्रथम पॉकेट बुक संस्करण 2005 ई पुनमुर्द्रण संस्करण 2009,2013,2016 ई०, पृष्ठ सं० 14।
10. एक्का डॉ० फा० पीटर पौल, *मौन घाटी,* एस जे सत्य भारती प्रकाशन, पृ०–50।
11. वही, पृ०–81।
12. सं०–गुप्ता रमणिका, *आदिवासी अस्मिता की पड़ताल करते साक्षात्कार,* स्वराज प्रकाशन पृष्ठ सं० 65।

––==00==––